गीत-रत्नावली

पुरोवाक्

डॉ. वासुदेव पोद्दार

गीतिनाटिका 'रत्नावली' कविवर गुलाब की एक अतुलनीय कृति है । महाकवि तुलसीदास के भावमय जगत के शब्दवेद्य में परकाय प्रवेश करते हुए कवि परावाक् की उस पराभूमि पर उतर आता है, जहाँ तुलसीदास के काव्यदेह की चित्तेश्वरी का अवतरण होता है । रत्नावली के चिद्‌जगत् में पहुँच कर श्री गुलाब ने विरहिणी के हृदय की महाभाषा को पढ़ा है जो कहीं सान्द्र, कहीं मन्द्र, कहीं अगाध, उत्ताल और उदात्त है । इस तापसी के चिद्बिंदु का शब्द-स्फोट ही भक्तराज तुलसी के हृदय की महावाणी है जो कविश्रेष्ठ गुलाब की पश्यंती में साकार होती हुई मध्यमा और बैखरी का आश्रयण लेकर गीति-नाट्य के रूप में प्रकट होती है । काव्य-नाटक के अंतराल में प्रवेश प्राप्त करने के लिए हमें कवि के साथ तुलसीदास के प्रकट एवं रत्नावली के अप्रकट मानस तक पहुँचना होगा । यह समर्थ कृति हमें महर्षि कवि एवं उनकी प्रेयसी के आलोकउत्स से लेकर उनके ऊर्ध्वमूल की पराचेतना के बहुत निकट तक ले आती है । यहाँ विरह-तपस्विनी के अश्रु-प्रवाह में तुलसीदास चरणामृत में तुलसीदल की तरह प्रस्तुत हैं । भक्तशिरोमणि के विशाल वाङ्मय में रत्ना प्रच्छन्न रूप से उनके साथ युगनद् भाव से सर्वत्र विद्यमान है --- अर्धनारीश्वर की तरह अद्वय । भवानी-सीता-सरस्वती की साकारता में यह तपोमयी छायामयी होकर सर्वत्र सर्वदा गतिमान है । महाकवि के मानसरोवर से यही कविता-सरिता सरयू बनकर उमड़ पड़ी है, "चली सुभग कविता सरिता सो" ; राम का विमल यश ही इसका धाराप्रवाह है "राम विमल जस जल भरिता सो"; यही तुलसीदास की सुमंगलमूला सरयू है ---"सरजू नाम सुमंगल मूला" । यह रामनद ही महाकवि के जीवन की अमृतधारा है । रत्नावली के राममंत्र से दीक्षित होकर

तुलसी की मानस-मंदाकिनी महाकाव्य की लोकपावन, गगनगंगा बनकर यह 'देवधुनि धारा' सनातन भाव से रामरूपी महासिंधु में समा गयी, "राम सरूप सिन्धु समुहानी"। यही तुलसीदास के भीतर 'स्वाति सारदा' बनकर अपने 'बारि बिचारु' की वर्षा से काव्य के 'चारु मुक्तामणि' प्रकट करती है, "होंहि प्रकट मुक्तामणि चारू" कविशिरोमणि श्री गुलाब की यह कालजयी काव्ययात्रा रत्नावली और तुलसीदास के गहन मनोलोक की महायात्रा है, जिसे कवि तद्भावभावित हृदय से सम्पूर्ण करता है।

मुग़ल युग के सांस्कृतिक प्रलय में समाहित मनुरूपा मानवता की सुरक्षा के लिए महाभागवत सत्ता का अवतरण महामानव तुलसीदास के रूप में होता है। काव्यनाटका में कविश्रेष्ठ गुलाब के सूत्रधार का यह कथन भारतीय नवजागरण के निवर्तमान यथार्थ का सजग उदाहरण है ---

कैसे रामचरित हम गाते!
होते तुलसीदास न तो कुल शास्त्र धरे रह जाते।

भारतीय संस्कृति के अभिनव भाष्यकार तुलसीदास एक घटना है, एक इतिहास है, त्रिकाल दृष्टि है, नई सृष्टि का भूत-भविष्य-वर्तमान है। सत्य तो यह है, तुलसीदास भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास की नवीन विभाजक रेखा है --- तुलसीदास के पूर्व और तुलासीदास के उत्तर, जिसका प्रवर्तक कालबिंदु है --- 'संवत् १६८० (सोलह सौ अस्सी) असी गंग के तीर'।

मानव-जीवन अदृष्ट के योगायोग की धारावाहिकता का प्रवहमाण है।

कवि इसे जनश्रुति के फलक पर अपने नाट्यदर्पण के द्वारा प्रतिफलित करता है ---

रामकथा कविगुरु ने गायी
पर थी अपनी कथा छिपायी
जो जनश्रुति से चलती आयी

अब हम उसे सुनाते

नाटिका का सम्पूर्ण गतिपथ राग-विराग का प्रसन्न गंभीर आवेग है । योग और वियोग में राग का मनोविज्ञान भी गहन और असाधारण है । राग की परम अवस्था में दुःख का अतिशय अत्यंत सुखरूप हो जाता है, प्रणय की उत्कट स्थति ही राग है । वैष्णव काव्यशास्त्र में यही गुप्त होने पर नीलीराग और प्रकट होने पर श्यामा राग कही गयी है । राग के महायोग में हम प्रेमास्पद को बाहर प्राप्त कर लेते हैं, भीतर खो देते हैं । यही प्रेम की संप्रयोगात्मक स्थिति है । पर ठीक इसके विपरीत वियोग में प्रेमास्पद जहाँ बाहर अप्राप्त है, वहीं भीतर भली-भाँति सम्प्राप्त । साहित्यशास्त्र में यही प्रणयराग या प्रेम का सम्प्रयोगात्मक और विप्रयोगात्मक स्वरूप है । कवि के द्वारा यहाँ उभयविध राग का उत्कर्ष प्रस्तुत है । विप्रयोग के महायोग ने रत्ना के भीतर तुलसीदास को साकार कर दिता है --- वियोग के इस सिद्धियोग में यह साकारता ही नीलीराग की महाभूमि है जहाँ श्रीकृष्ण की महाभाग श्रीराधा स्थित है । कवि का सिद्धवचन है ---

क्यों फिर दिखे अभी मिलनोत्सुक
स्वामी इन नयनों के सम्मुख !
तनु-छवि वही, वही सुन्दर मुख
दृग में दीप्ति वही थी

यहीं तक नहीं, रत्ना नीलीराग की परम भूमि पर अपने विवाह के महान क्षण का भी साक्षात्कार कर लेती है ---

सज-धज कर स्वामी ज्यों आये
माँ ने आसन दे बैठाये
विदा-गीत सखियों ने गाये
डोला गया सजाया

यह तापसी विप्रयोग के उस शिखर पर विद्यमान है, जहाँ महायोग की सारी भूमिकाओं का अतिक्रमण हो जाता है । वह पतिगृह-गमन के सम्पूर्ण परिदृश्य को साकार कर देती है ---

डोली सज रे, ओ री माई
देख, लिवाने आये, स्वामी, कर दे शीघ्र विदाई
उबटन रगड़ मुझे नहला दे
माँग बीच सिन्दूर सजा दे
पाँव महावर लगा उढ़ा दे
चुनरी लाल रँगाई

तापसी रत्ना के आभ्यंतर लोक में तुलसीदास एक क्षण के लिए भी अप्रस्तुत नहीं, वह चिर-विरहिणी की अनुभूति के बिंदु-बिंदु में सर्वत्र समाहित हैं। महाकवि ने भी रत्नावली को बाहर खो दिया, पर वह उनकी कविता में रामाकार हो गयी। 'प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई', 'कहँ चंद्रिका चन्द्र तजि जाई' जैसी अमृतसंजीवनी सूक्तियों में अदृश्य तपस्विनी के महान व्यक्तित्व का रसरसायन सर्वत्र विद्यमान है। अपने मानस को रामचरित के रूप में प्रस्तुत करते समय महाकवि की शिवता के भीतर रत्नावली का उदय 'श्रद्धा' के रूप में होता है --- 'श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'। यही तो है तुलसी के मानस का मंगलाचरण, यही है शैवाद्वैत और शाक्ताद्वैत की पराभूमि। इस त्यागमयी तापसी का सम्पूर्ण विरह महाकवि के हृदय में रामाकार हो गया --- सर्वतोमुख धीरोदात्त 'सीताराम' के धीरललित अद्वय प्रेम में रूपांतरित---

सीताराम भक्ति-रस पीकर
ले अब इसे सँवार
उन्हें भज रे जगजीव गँवार!

कवि गुलाब ने अपने काव्य में जिस शिखर पर तुलसीदास को देखा है -- वहाँ से नीचे उतरने का कोई मार्ग नहीं, वहाँ न काल है, न देश, न कारणता है।

वहाँ पत्नी जैसा कोई अवस्थान नहीं, वहाँ पराम्बा है -- 'माता'

तन पर गैरिक पट धारण कर
विवश तुझे हूँ यह कहने पर

दे सुहाग इस झोली में भर
भिक्षा में, ओ माता !
काल का रथ यदि उलटा जाता

रत्नावली के शब्द-वेद्य को पार कर तुलसीदास लोकाकाश के महापथ को लाँघते हुए परमव्योम में ऊर्ध्व संतरण कर रहे थे, पत्नी उन्हें वीणापाणि के रूप में दिखाई दे रही थी ---

ज्योति की धारा-सी उमड़ी है
पत्नी नहीं, स्वयं सम्मुख तू वीणापाणि खड़ी है

असाधारण घटना का स्वरूपांतरण भी असाधारण होता है, प्रेमाद्वैत की अवस्था अद्भुत है --- चाहे वह लौकिक हो या लोकोत्तर। इसी प्रेमाद्वैत का यह प्रभाव है --- कवि की यह अक्षर रमणी उनके भीतर असामान्य हो गयी । छायासीता की तरह रत्ना सर्वदा तुलसीदास के साथ है --- पर छाया से भी अमूर्त । संभवतः महाकवि ने अपने युग के निशाचरत्व का विनाश करने के लिए ही उसे विरह की चिरंतन अग्नि को समर्पित कर दिया ---

तुम्ह पावक मह करहुँ निवासा। जौ लगि करऊँ निसाचर नासा।।

सीता तो कालान्तर में पावक से बाहर निकल आयी थी, पर तुलसीदास ने रत्ना को सदा के लिए ही पावक को समर्पित कर दिया। वह आज भी उनके साहित्य की काव्यचेतना में धधकती हुई युग-युगान्तर के निशाचरत्व का दाह कर रही है। इसलिए कविवर गुलाब ने रत्ना का बलिदान प्रस्तुत करते हुए उसे भवतारिणी बना दिया, संसार इस विरहिणी का चिरऋणी बन गया---

हुआ जो कुछ भी आज सही है
यदि मेरी बलि लेकर ही प्रभु ने हरिकथा कही है

यह भवतारिणी सरिता संसार का उद्धार करती हुई कवि की कविता में 'देवधुनि धारा' बनकर सतत बह रही है --- 'जग बिच भगति देवधुनि धारा' । यही 'त्रिविध ताप-त्रासक तिमुहानी' है । इसका सर्वदर्शन दर्शनीय, विश्वलोचन विश्वरूप ही तुलसी की

देवधारा का लोकपावन जल है। घनीभूत प्रेम का यह द्वैताद्वैत ही इस महान गीतिनाट्य का विभूति-योग है। आदिकवि के महर्षिहृदय में क्रौंचवध की वेदना श्लोक बनकर प्रकट हो गयी — 'शोकः श्लोकत्वमागतः'। वहीं रत्नावली की हृदयवेदना रामाकार होती हुई सर्वजगगामिनी, सर्वलोकपावनी, सर्वकालानुयायिनी, सर्वतोव्यापिनी, सर्वकल्याणकामिनी महाकवि की मानसमंदाकिनी बनकर जनजननी मनभाविनी-हृदयहुलासिनी बन गयी। तुलसीदास के काव्य में 'रत्न' की इतनी अलंकारभूता 'अवलियाँ' हैं --- जितनी भारत महासागर में भी नहीं --- क्या यही महाकवि के हृदय का रसरहस्य नहीं ? कविवर गुलाब की कविता में रत्नावली --- तुलसीदास और सीताराम तीनों का समवाय प्रस्तुत है, फलतः मृत्युंजयी दाम्पत्य का यह चिन्मय काव्य कालजयी हो गया है। सहसा मुझे भारतीय वाङ्मय का त्रिपद महावाक्य स्मरण हो आता है ---

चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी

४० सोमनाथ लाहिरी सरणी डॉ. वासुदेव पोद्दार
(टालीगंज सर्कुलर रोड)
कलकत्ता
१६ जुलाई (गुरुपूर्णिमा), २०००